प्रकरण तीन

"एक बहुत अच्छे साधु-स्वभाव वाले पुरुष"

"[चैतन्य] महाप्रभु और उनके भक्तों जैसे उच्चतम श्रेणी के कल्याणकर्ता न हुए हैं, न होंगे। अन्य प्रकार के लाभ केवल धोखा हैं; सचमुच अत्यन्त हानिकारक हैं, जबकि महाप्रभु और उनके अनुयायियों द्वारा किया गया कल्याण सबसे सच्चा, सबसे बड़ा और शाश्वत लाभ है। यह लाभ किसी देश-विशेष के लिए नहीं है, जो दूसरे के लिए उत्पात पैदा करे; वरन् यह समस्त विश्व के लिए है।"

—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती।

अभय के मित्र नरेन्द्रनाथ मल्लिक आग्रह कर रहे थे। वे चाहते थे कि अभय मायापुर से आये एक साधु से मिलें। नरेन और उनके कुछ मित्र उस साधु से उसके पास के आश्रम में मिल चुके थे जो उल्टाडंग जंकशन रोड पर स्थित था और अब वे अभय का मत जानना चाहते थे। अपनी मित्र-मंडली में अभय नेता माने जाते थे, इसलिए यदि नरेन औरों को बता सकें कि साधु के प्रति अभय भी सम्मान की भावना रखते हैं, तो उससे उनके अपने मूल्यांकनों का समर्थन होगा। अभय को जाने में हिचक थी, लेकिन नरेन उन पर दबाव डाल रहे थे।

वे शाम होते ही भीड़ से भरी सड़क पर आने-जाने वालों के बीच खड़े बातें कर रहे थे, जबकि भाड़े की घोड़ा-गाड़ियाँ, बैल-गाड़ियाँ और बीच-बीच में आटो-टैक्सियाँ और मोटर-बसें शोर करती हुई आगे बढ़ रही थीं। नरेन ने अपने मित्र अभय की बाँह कसकर पकड़ ली; वे उन्हें आगे की ओर घसीटने लगे, जबकि अभय हँस रहे थे और उल्टी दिशा में हठपूर्वक जोर लगा रहे थे। नरेन का तर्क था कि चूँकि वह स्थान कुछ ही मकान आगे

था, इसलिए उन्हें कम से कम थोड़ी देर के लिए वहाँ हो आना चाहिए। अभय हँसे और उन्होंने माफी माँगनी चाही। लोग समझ रहे थे कि दोनों व्यक्ति मित्र थे, लेकिन बड़ा अजीब दृश्य था; खादी का सफेद कुर्ता और धोती पहने हुए सुन्दर युवक को उसका मित्र खींचे लिए जा रहा था।

नरेन ने बताया कि साधु, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, वैष्णव थे और चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। उनके एक शिष्य, जो संन्यासी थे, मल्लिकों के घर आ चुके थे और उन्होंने उन्हें श्रील भक्तिसिद्धान्त से मिलने को आमंत्रित किया था। मल्लिकों में से कुछ वहाँ गये थे और उनसे बहुत प्रभावित हुए थे।

किन्तु अभय शंकालु बने रहे। उन्होंने कहा, "नहीं, नहीं, मैं इन सब साधुओं को जानता हूँ। मुझे नहीं जाना है।" अभय ने अपने बचपन में बहुत से साधू देखे थे; उनके पिता घर पर कम से कम तीन-चार को प्रतिदिन आमंत्रित करते थे। उनमें से कुछ तो केवल भिखमंगे थे और कुछ गाँजा भी पीते थे। गौर मोहन बहुत उदार थे और जो भी संन्यासी का गेरुआ वस्त्र पहने होता उसे घर में आने देते थे। तो क्या इसका तात्पर्य यह था कि चाहे कोई भीख माँगता हो, या गाँजा पीता हो, फिर भी उसे साधु माना जाये, केवल इसीलिए कि वह संन्यासी की वेश-भूषा में है या मठ-निर्माण के नाम से धन इकट्ठा कर रहा है, या अपने भाषण से लोगों को प्रभावित कर लेता है?

नहीं। ये साधू अधिकतर बहुत खराब लोग होते थे। अभय ने अपने पड़ोस में भी एक ऐसे व्यक्ति को देखा था, जो पेशे से भिखमंगा था। सवेरे जब अन्य लोग काम के कपड़े पहनकर अपने काम पर जाते, तो यह व्यक्ति गेरुआ वस्त्र धारण करके भीख माँगने निकलता और इस तरह अपना पेट पालता। लेकिन क्या यह उचित था कि ऐसे तथाकथित साधु का सम्मानपूर्वक दर्शन किया जाये, मानो वह गुरु हो।

नरेन का तर्क था कि वे साधु-विशेष बहुत विद्वान पुरुष थे और अभय को चाहिए कि कम से कम उनसे मिल लें, और स्वयं निर्णय करें। अभय चाहते थे कि उनके मित्र नरेन इतना आग्रह न करें, लेकिन अन्त में वे उनकी बात का इनकार न कर सके। एक साथ, वे पारसनाथ जैन मन्दिर से होते हुए उल्टडंग पहुँचे, जहाँ 'भक्तिविनोद आसन' अंकित था और जो गौड़ीय मठ के आवासों की सूचना दे रहा था।

द्वार पर उन्होंने पूछा तो एक नवयुवक, जो श्रीमान् मल्लिक को पहचानता था—वे पहले मठ को दान दे चुके थे—उन्हें तुरन्त दूसरी मंजिल पर ले गया और उसने उन्हें श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के सामने प्रस्तुत किया। वे उस समय कुछ शिष्यों और अतिथियों के साथ बैठे हुए सायंकालीन वातावरण का आनन्द ले रहे थे।

अपनी पीठ को पूरी तरह सीधा करके बैठे हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती लम्बे

लगते थे। शरीर से वे दुबले थे; उनकी बाहें लम्बी थीं और उनका रंग गोरा और सुनहरा था। उन्होंने सादे फ्रेम का बाई-फोकल गोल चश्मा पहना था। उनकी नाक नुकीली थी, मस्तक प्रशस्त था, चेहरे से विद्वत्ता प्रकट होती थी, लेकिन उस पर भीरुता बिल्कुल नहीं थी। उनके मस्तक पर लगे वैष्णव-तिलक की खड़ी रेखाओं से अभय परिचित थे, ठीक वैसे ही, जैसे वे उनके सादे संन्यासी उत्तरीय से परिचित थे, जो उनके दाहिने कंधे पर पड़ा हुआ लटक रहा था, जिससे बाँया कंधा और आधा वक्षस्थल खुले थे। उन्होंने गले में तुलसी की माला पहनी हुई थी और मृत्तिका से बने वैष्णव तिलक के चिह्न उनके गले में, कंधे पर और बाँहों के ऊपरी भाग में दृष्टिगोचर हो रहे थे। निर्मल सफेद जनेऊ, गले में लिपटा हुआ छाती पर विराज रहा था। अभय और नरेन दोनों ने वैष्णव परिवारों में पले होने के कारण श्रद्धास्पद संन्यासी को देखते ही उन्हें तुरन्त साष्टांग प्रणाम किया।

अभी दोनों युवक बैठने को ही थे कि औपचारिक प्रारम्भिक वार्तालाप आरम्भ होने से पहले ही श्रील भक्तिसिद्धान्त झट बोले, "आप शिक्षित नवयुवक हैं। आप चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार विश्वभर में क्यों नहीं करते?"

अभय ने जो कुछ सुना, उस पर विश्वास करना उनके लिए कठिन हो गया। अभी उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान भी नहीं हुआ था, कि यह साधु उन्हें बताने लगा कि उन्हें क्या करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के सामने बैठे अभय अपनी बुद्धि का सहारा लेते हुए उनके विषय में अपनी स्पष्ट धारणा बनाने में लगे थे, लेकिन इस बीच उस व्यक्ति ने उन्हें बता दिया कि उन्हें प्रचारक बनकर सारे विश्व में घूमना चाहिए।

अभय पर तत्क्षण प्रभाव हुआ, लेकिन वे अपना बौद्धिक संशय छोड़ने को तैयार नहीं थे। जो भी हो, साधु ने जो कुछ कहा था उसमें पूर्वानुमान थे। अभय ने अपनी वेश-भूषा से अपने को गांधीवादी बता दिया था, और उनके मन में आया कि वे वाद-विवाद शुरू करें। किन्तु ज्यों-ज्यों वे भक्तिसिद्धान्त के वचनों को सुनते गये, वे साधु के विश्वास के बल के सामने विजित-सा अनुभव करने लगे। अभय को मालूम हो गया कि महाप्रभु चैतन्य के अतिरिक्त साधु को अन्य किसी चीज की चिन्ता नहीं थी और इसी कारण वे महान् हो गये थे। इसी कारण उनकी चारों ओर इतने अनुयायी इकट्ठे हुए थे और इसी कारण अभय उनकी ओर आकर्षण का अनुभव करते थे, उनसे अनुप्राणित थे, विजित थे और उनके वचन अधिकाधिक सुनना चाहते थे। लेकिन उन्हें सच्चाई की परख के लिए एक विवाद खड़ा करना था।

विवाद के लिए विवश होकर अभय उन शब्दों के उत्तर में बोले जो श्रील भक्तिसिद्धान्त ने मिलने के तुरन्त बाद संक्षेप में कहे थे। "आपके चैतन्य के सन्देश को कौन सुनेगा?" अभय ने प्रश्न किया, "हम पराधीन देश के लोग हैं। पहले भारत को स्वतंत्र

होना है। अंग्रेज शासन के अधीन रहते हुए हम भारतीय संस्कृति का प्रचार कैसे कर सकते हैं?"

अभय ने अभिमानवश नहीं पूछा था; उनका प्रश्न केवल उत्तेजक था, लेकिन फिर भी वह स्पष्ट रूप से चुनौतीपूर्ण था। यदि वे साधु की उक्ति को गम्भीर समझकर ग्रहण करते हैं—और श्रील भक्तिसिद्धान्त के व्यवहार में ऐसा कुछ नहीं था, जिससे मालूम हो कि वे गम्भीर नहीं हैं—तो अभय वह प्रश्न पूछने के लिए अपने को विवश अनुभव कर रहे थे कि वे भारत के परतंत्र रहते, इस प्रकार का प्रस्ताव कैसे कर सकते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त ने शान्त, गम्भीर स्वर में उत्तर दिया कि कृष्ण-चेतना को भारतीय राजनीति में परिवर्तन की प्रतीक्षा नहीं करनी है, न ही वह इस बात पर निर्भर है कि शासन कौन करता है। कृष्ण-चेतना इतनी महत्त्वपूर्ण है—अनन्य रूप से इतनी महत्त्वपूर्ण है—कि वह प्रतीक्षा नहीं कर सकती।

अभय उनकी निर्भीकता से प्रभावित हो गये। वे ऐसी बात कैसे कह सकते थे? उल्टडंग की उस छोटी छत के अतिरिक्त समस्त भारत में खलबली थी और सारा देश अभय के तर्क का समर्थन करता लग रहा था। बंगाल के बहुत-से प्रसिद्ध नेता, बहुत से संत, स्वयं गाँधीजी, शिक्षित और आध्यात्मिक विचार के लोग, सभी वही प्रश्न करते जो अभय ने किया था—इस साधु की प्रासंगिकता को चुनौती देते हुए। इतने पर भी वे हर वस्तु को, हर व्यक्ति को नकार रहे थे, मानों किसी का कोई महत्त्व ही न हो।

श्रील भक्तिसिद्धान्त कहते रहे : एक शक्ति का शासन हो अथवा दूसरी का, यह अस्थायी परिस्थिति है; किन्तु शाश्वत वास्तविकता कृष्ण-चेतना है और वास्तविक सत्ता आत्मा है। इसलिए मनुष्य-कृत कोई भी राजनीतिक व्यवस्था मानवता की वास्तव में सहायता नहीं कर सकती। वैदिक धर्मशास्त्रों का यही निर्णय है और आध्यात्मिक गुरुओं ने यही कहा है। यद्यपि हर व्यक्ति भगवान् का शाश्वत सेवक है, किन्तु जब वह अपने को अस्थायी शरीर समझने लगता है और अपने राष्ट्र को आराध्य मानता है, तब वह भ्रान्ति में पड़ जाता है। विश्व के राजनीतिक आन्दोलनों के नेता और उनके अनुगामी, जिसमें स्वराज का आन्दोलन भी शामिल है, मात्र इसी प्रकार की भ्रान्ति पैदा कर रहे हैं। वास्तविक कल्याण-कार्य का उद्देश्य चाहे वह व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो या राजनीतिक हो, मनुष्य को दूसरे जन्म के लिए तैयार करना और श्रीभगवान् के साथ उसके शाश्वत सम्बन्ध को पुनःस्थापित करना होना चाहिए।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती इन विचारों को अपने लेखों में कई बार पहले व्यक्त कर चुके थे :

> [चैतन्य] महाप्रभु और उनके भक्तों जैसे उच्चतम श्रेणी के कल्याण-कर्ता न हुए हैं, न होंगे। अन्य प्रकार के कल्याण-कार्य न केवल धोखा हैं, बल्कि हानिकारक भी हैं, जबकि महाप्रभु और उनके अनुयायियों द्वारा किया गया कल्याण सबसे सच्चा, सबसे बड़ा और शाश्वत कल्याण है।... यह कल्याण किसी देश-विशेष के लिए नहीं है, जो दूसरे के लिए उत्पात पैदा करे वरन् यह समस्त विश्व के लिए है।... श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो दया जीवों पर दर्शाई है, वह उन्हें सभी अभावों, सभी असुविधाओं और सभी कष्टों से सदा के लिए मुक्त करती है... वह दया किसी पाप को जन्म नहीं देती और जिन जीवों को यह मिली है, वे संसार के पापों के भागी नहीं बनेंगे।

जब अभय ध्यानपूर्वक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के तर्कों को सुन रहे थे, तो उन्हें एक बंगाली कवि का स्मरण आ रहा था, जिसने लिखा है कि भारत से कम उन्नत सभ्यता वाले देश, जैसे चीन और जापान भी स्वतंत्र हैं, जबकि भारत राजनीतिक उत्पीड़न के अन्तर्गत परिश्रम कर रहा है। अभय को राष्ट्रीयता के दर्शन का भलीभाँति ज्ञान था, जो इस बात पर बल देता था कि भारत को सबसे पहले स्वतंत्र होना है। भारतीय जनता का उत्पीड़न एक वास्तविकता थी, निरपराध नागरिकों का अंग्रेजों द्वारा संहार एक वास्तविकता थी और स्वतंत्रता से ही जन-कल्याण होगा। आध्यात्मिक जीवन एक विलास था, जिसका उपभोग केवल आजादी के बाद हो सकता था। उस समय अंग्रेज शासन से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना ही प्रासंगिक आध्यात्मिक आन्दोलन था। जनता का पक्ष ही स्वयं में भगवान् था।

तो भी, चूँकि अभय का पालन-पोषण एक वैष्णव के रूप में हुआ था, अतः श्रील भक्तिसिद्धान्त जो कुछ कह रहे थे, वह उन्हें अच्छा लग रहा था। अभय इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि यह अन्य साधुओं की तरह कोई संदिग्ध चरित वाला साधु नहीं है। वे श्रील भक्तिसिद्धान्त के वचनों में सच्चाई का अनुभव कर रहे थे। वह साधु कोई अपना दर्शन नहीं गढ़ रहा था, वह शेखी नहीं बघार रहा था, न आक्रामक बन रहा था, यद्यपि उसके बात करने का ढंग ऐसा था कि उससे अन्य सभी दर्शन खोखले लग रहे थे। वे वैदिक साहित्य और ऋषियों के शाश्वत आदेशों का कथन कर रहे थे और उन्हें सुनना अभय को प्रिय लग रहा था।

कभी अंग्रेजी और कभी बंगाली में बोलते हुए और कभी *भगवद्गीता* से संस्कृत श्लोकों को उद्धृत करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त ने श्रीकृष्ण को सर्वोच्च वैदिक अधिकारी बताया। *भगवद्गीता* में कृष्ण ने घोषणा की थी कि सारे धर्म त्यागकर मनुष्य को चाहिए

कि वह श्रीभगवान् की शरण में अपने आपको सर्मर्पित कर दे। (*सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज*)। और *श्रीमद्भागवत* में उसी बात की पुष्टि की गई। *धर्मः प्रोज्झितकैतवोत्र परमो निर्मात्सराणां सताम्* अन्य सभी धर्म अपवित्र और त्याज्य हैं और केवल भागवत-धर्म ही रहना चाहिए, जिसका अर्थ है, श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए अपने कर्तव्य का पालन करना। श्रील भक्तिसिद्धान्त का प्रस्तुतीकरण इतना शक्तिशाली था कि किसी को भी, जो शास्त्रों को स्वीकार करता हो, उनका निष्कर्ष मान्य होना ही था।

भक्तिसिद्धान्त ने कहा कि अब लोग नास्तिक हो गये हैं, इसलिए अब उनका विश्वास नहीं रह गया है कि भक्ति से सभी अनियमितताएँ, यहाँ तक कि राजनीतिक क्षेत्र की भी, दूर हो जाती हैं। आगे बोलते हुए उन्होंने ऐसे सभी लोगों की आलोचना की, जो आत्मा के विषय में अनजान हैं, किन्तु फिर भी नेता बनने का दावा करते हैं। उन्होंने ऐसे समकालीन नेताओं के नाम भी लिए और उनकी विफलताएँ बताईं। अमर्त्य आत्मा, कृष्ण से उसके सम्बन्ध और भक्ति के विषय में लोगों को शिक्षित बनाकर, मानवता का अधिक से अधिक कल्याण करने की तात्कालिक आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया।

अभय को भगवान् कृष्ण की आराधना या *भगवद्गीता* में उनके उपदेश भूले नहीं थे। और उनका परिवार भगवान् चैतन्य महाप्रभु की पूजा हमेशा से करता आया था। उन्हीं के मिशन का समर्थन भक्तिसिद्धान्त सरस्वती कर रहे थे। गौड़ीय मठ के लोग जिस तरह कृष्ण की पूजा करते थे, उसी तरह उन्होंने भी जीवन-भर कृष्ण की पूजा की थी और वे कृष्ण को कभी नहीं भूले थे। लेकिन वैष्णव दर्शन का ऐसा सशक्त प्रस्तुतीकरण सुनकर, वे विस्मित हो गये। पढ़ाई, विवाह, राष्ट्रीय आन्दोलन और अन्य मामलों में लिप्त होते हुए भी, वे कृष्ण को कभी नहीं भूले थे, किन्तु भक्तिसिद्धान्त सरस्वती अब उनमें उनकी मूल कृष्ण-चेतना को जगा रहे थे और इस आध्यात्मिक गुरु के वचनों को सुनकर वे न केवल कृष्ण का स्मरण कर रहे थे, वरन् अपने में कृष्ण-चेतना को हजारों गुना, लाखों गुना समृद्ध अनुभव कर रहे थे। बचपन में अभय ने जो नहीं सुना था, जगन्नाथपुरी में जो उनके लिए अस्पष्ट था, कालेज में जिससे वे विचलित थे, पिता ने उनकी जिस बात की रक्षा की थी, वह सब अब उनकी प्रतिक्रिया-स्वरूप भावनाओं में उमड़ आया। और वे उसे बनाए रखना चाहते थे।

वे पराजित अनुभव करने लगे। लेकिन यह उन्हें पसन्द आया। अचानक उन्हें अनुभूति हुई कि वे कभी पहले पराजित नहीं हुए थे। परन्तु इस पराजय से कोई हानि नहीं थी। यह बहुत बड़ा लाभ था।

श्रील प्रभुपाद : *मैं वैष्णव परिवार से था, इसलिए उनके प्रचार का मूल्य मैं समझ सकता था। बात तो वे हर एक से करते थे, लेकिन मुझमें उन्होंने कुछ विशेष पाया और*

उनके तर्क और उनकी प्रस्तुतीकरण-शैली में मेरा विश्वास जम गया। मैं विस्मय से अत्यन्त अभिभूत था। मेरी समझ में बात आ गई : यह एक उपयुक्त व्यक्ति है, जो वास्तविक धार्मिक विचार दे सकता है।

देर हो गई; अभय और नरेन को उनसे बात करते दो घंटे हो गये थे। एक ब्रह्मचारी ने उनकी खुली हथेली पर कुछ प्रसाद रखा और वे कृतज्ञतापूर्वक उठे और अनुमति लेकर चले गये।

वे सीढ़ी से नीचे उतरकर सड़क पर आ गये। रात अंधेरी थी। इधर-उधर बत्तियाँ जल रही थीं और कुछ दुकानें खुली थीं। अभय ने बड़े संतोष के साथ उस सब पर विचार किया, जिसे उन्होंने अभी सुना था। श्रील भक्तिसिद्धान्त की इस व्याख्या का कि स्वतंत्रता का आन्दोलन अस्थायी और अधूरा प्रयोजन है, अभय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि वे राष्ट्रवादी कम और भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के अनुयायी अधिक हैं। उन्हें यह विचार भी आया कि अच्छा होता, यदि उनका विवाह न हुआ होता। यह महान् व्यक्ति उनसे प्रचार करने को कह रहा था। वे तुरन्त इसे मान लेते, किन्तु उनका विवाह हो चुका था और परिवार का त्याग करना अन्याय होगा।

आश्रम से जाते हुए नरेन अपने मित्र की ओर मुड़े, "तो, अभय, तुम्हारी धारणा क्या है? उनके विषय में तुम्हारे विचार क्या हैं?"

"वे अद्भुत हैं!" अभय ने उत्तर दिया, "भगवान् चैतन्य का सन्देश एक बहुत बड़े निपुण व्यक्ति के हाथों में है।"

श्रील प्रभुपाद : *मैंने तुरन्त उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार कर लिया। औपचारिक रूप में नहीं, किन्तु अपने हृदय में। मैं सोच रहा था कि मेरी भेंट एक बहुत अच्छे साधु-स्वभाव वाले पुरुष से हुई है।*

• • •

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से पहली भेंट के बाद अभय गौड़ीय मठ के भक्तों के साथ मेल-जोल बढ़ाने लगे। वे उन्हें पुस्तकें देते और अपने आध्यात्मिक गुरु का इतिहास बताते।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती भक्तिविनोद ठाकुर की दस संतानों में से एक थे। भक्तिविनोद ठाकुर, स्वयं महाप्रभु चैतन्य की गुरु-शिष्य परम्परा में एक महान् वैष्णव गुरु थे। भक्तिविनोद के समय से पहले महाप्रभु चैतन्य के उपदेश ऐसे गुरुओं और सम्प्रदायों के हाथ में पड़कर, धुंधले हो गये थे, जो झूठ-मूठ अपने को महाप्रभु के अनुयायी बताते थे, किन्तु जो उनकी विशुद्ध शिक्षाओं से कई तरह से बहुत दूर हट चुके थे। वैष्णव धर्म

की सत्कीर्ति घटने लगी थी। किन्तु भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने प्रचुर लेखों द्वारा और सरकार में एक उच्च अधिकारी होने के नाते अपनी सामाजिक स्थिति के कारण वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा पुन:स्थापित की। उन्होंने प्रचारित किया कि महाप्रभु चैतन्य के उपदेश आस्तिकता का सर्वोत्तम रूप हैं और वे किसी सम्प्रदाय या धर्म या राष्ट्र-विशेष के लिए नहीं, अपितु विश्व की समस्त मानवता के लिए है। उन्होंने भविष्यवाणी की कि महाप्रभु चैतन्य की शिक्षाओं का प्रसार विश्वभर में होगा और यही उनकी मनोकामना थी।

> महाप्रभु चैतन्य द्वारा प्रचारित धर्म विश्वभर के लिए है और केवल कुछ लोगों के लिए नहीं है... कीर्तन का सिद्धान्त संसार के भावी धर्म के रूप में विकास करने के लिए बिना जाति या सम्प्रदाय के भेद-भाव के सभी वर्गों के लोगों को आमंत्रित करता है। ऐसा लगता है कि यह विश्वभर में फैल जायेगा और ऐसे सारे साम्प्रदायिक धर्मों का स्थान ले लेगा, जो बाहरी लोगों को मस्जिद, गिरजाघर और मन्दिर की सीमाओं से दूर रखता है।
>
> महाप्रभु चैतन्य का आगमन, केवल भारत के कुछ लोगों के उद्धार के लिए नहीं हुआ। वरन् उनका मुख्य उद्देश्य विश्व के सभी देशों के सभी प्राणियों का उद्धार करना और शाश्वत धर्म का प्रचार करना था। चैतन्य भागवत् में महाप्रभु चैतन्य कहते हैं, "मेरे नाम का गान हर कस्बे, देश और गाँव में होगा।" इस निर्विवाद आदेश का निस्सन्देह पालन होगा।...यद्यपि अभी तक कोई विशुद्ध वैष्णव-समाज अस्तित्व में नहीं आया है, तो भी महाप्रभु चैतन्य की भविष्यवाणी कुछ ही दिनों में सत्य सिद्ध होगी; ऐसा मुझे विश्वास है। क्यों नहीं? आरम्भ में कोई भी वस्तु नितान्त विशुद्ध नहीं होती। अपूर्णता से ही पवित्रता का जन्म होगा।
>
> ओह! वह दिन, जब भाग्यशाली अंग्रेज, फ्रांसीसी, रूसी, जर्मन और अमेरिकन जनता पताकाएँ, मृदंग और करताल लेकर अपने कस्बों और सड़कों में कीर्तन का स्वर ऊँचा करेगी! वह दिन कब आयेगा?

एक प्रमुख न्यायाधीश होने के नाते भक्तिविनोद ठाकुर जिम्मेदार सरकारी अधिकारी थे। वे भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर के अधीक्षक भी थे और दस बच्चों के पिता थे। इन दायित्वों का भार वहन करते हुए भी वे कृष्णभक्ति का प्रचार असाधारण स्फूर्ति के साथ करते थे। शाम को आफिस से घर आने पर वे भोजन करते और आठ बजे से आधी रात तक सोते; तब उठ जाते और सवेरा होने तक लिखने का कार्य करते। उन्होंने अपने जीवन में सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं, जिनमें बहुत-सी अंग्रजी में थीं। उनकी देनों में एक

महत्त्वपूर्ण देन यह है कि जगन्नाथदास बाबाजी और गौरकिशोरदास बाबाजी के सहयोग से उन्होंने कलकत्ता से लगभग नब्बे किलोमीटर उत्तर स्थित मायापुर में भगवान् चैतन्य के ठीक जन्मस्थान का पता लगाया।

भारत में गौड़ीय वैष्णव धर्म के सुधार के लिए प्रयत्न करते हुए उन्होंने भगवान् चैतन्य से प्रार्थना की, "आपकी शिक्षाओं की बहुत अवमानना हुई है। मेरे वश में नहीं है कि मैं उनकी पुनर्स्थापना करूँ।" और उन्होंने एक पुत्र के लिए प्रार्थना की, जो उनके प्रचार-कार्य में उनकी सहायता कर सके। जब ६ फरवरी १८७४ को जगन्नाथपुरी में भक्तिविनोद ठाकुर को भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की पुत्र-प्राप्ति हुई, तो वैष्णवों ने यही समझा कि यह उनकी प्रार्थनाओं का फल है। जब भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का जन्म हुआ, तो उनकी नाभिनाड़ी ब्राह्मणों द्वारा धारण किये जाने वाले यज्ञोपवीत की तरह गले से लिपटी हुई और छाती पर फैली हुई थी। उनके माँ-बाप ने उनका नाम विमल प्रसाद रखा।

जब विमल प्रसाद छह मास के थे, तो जगन्नाथ-उत्सव के रथ भक्तिविनोद के निवास के द्वार पर रुक गये और तीन दिन तक नहीं चल सके। भक्तिविनोद ठाकुर की पत्नी बच्चे को रथ तक लाईं और जगन्नाथ जी के श्रीविग्रह के सामने गईं। बच्चे ने तत्क्षण अपनी बाहें फैलाईं और भगवान् जगन्नाथ के चरण छुए। तुरन्त भगवान् के श्रीविग्रह से एक माला उसके ऊपर गिरी और वह कृत-मंगल हुआ। जब भक्तिविनोद ठाकुर को ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र के ऊपर भगवान् की एक माला गिरी है, तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह वही पुत्र है, जिसके लिए उन्होंने प्रार्थना की थी।

एक दिन जब विमलप्रसाद केवल चार वर्ष के बच्चे थे, उनके पिताजी ने उन्हें इसलिए हल्की-सी फटकार बताई कि वे एक आम, बिना उसे भगवान् कृष्ण को अर्पित किये खा गये थे। विमलप्रसाद ने, यद्यपि तब वे केवल बच्चे थे, इसे भगवान् के प्रति अपना अपराध माना, और उन्होंने फिर कभी भी आम न खाने की सौगंध ले ली। (इस सौगंध का निर्वाह उन्होंने आजीवन किया।) सात वर्ष की अवस्था होने तक विमल को सारी *भगवद्गीता* कंठस्थ हो गई थी और वे उसके श्लोकों की व्याख्या भी कर सकते थे। तब उनके पिता वैष्णव-पत्रिका, *सज्जन-तोषणी* के प्रकाशन के साथ साथ उन्हें मुद्रण और प्रूफ-रीडिंग का प्रशिक्षण देने लगे। पिता के साथ उन्होंने बहुत से तीर्थ-स्थानों की यात्राएँ की और वहाँ के विद्वान पंडितों के प्रवचन सुने।

छात्र के रूप में विमल को पाठ्यपुस्तकों के स्थान पर अपने पिता की लिखी पुस्तकें पढ़ना अधिक पसन्द था। पच्चीस वर्ष की अवस्था प्राप्त करने तक वे संस्कृत, गणित और खगोलविज्ञान में निष्णात हो गये थे और पत्रिकाओं में कई लेख और एक पुस्तक "सूर्य सिद्धान्त" लिखने वाले लेखक तथा प्रकाशक के रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई थी। *सूर्य-*

सिद्धान्त नामक पुस्तक में प्रदर्शित विद्वत्ता के कारण वे 'सिद्धान्त सरस्वती' की उपाधि से विभूषित हुए। जब वे छब्बीस वर्ष के हुए, तब उनके पिता ने प्रसिद्ध वैष्णव संत गौरकिशोर दास बाबाजी से उन्हें दीक्षा दिलाई। बाबाजी ने उन्हें "अन्य कार्यों को छोड़कर परम सत्य के प्रचार" की सलाह दी। गौरकिशोर दास बाबाजी का आशीर्वाद प्राप्त कर विमल प्रसाद ने (जिनका नाम अब सिद्धान्त सरस्वती हो गया था) अपने शरीर, मन और वाणी को भगवान् कृष्ण की सेवा में अर्पित करने का निश्चय किया।

सन् १९०५ ई. में सिद्धान्त सरस्वती ने व्रत लिया कि वे हरे कृष्ण मंत्रोच्चार एक खरब बार करेंगे। मायापुर में भगवान् चैतन्य के जन्म-स्थल के निकट एक पर्णकुटी में रहते हुए वे हरे कृष्ण मंत्र का जप दिन-रात करते रहे। वे एक मिट्टी के पात्र में दिन में एक बार भात बनाते और अन्य कुछ न खाते। वे जमीन पर सोते और जब फूस की छत से वर्षा का जल नीचे टपकता, तब भी वे एक छाते के नीचे बैठकर मन्त्रोच्चार में लीन रहते।

सन् १९११ ई. में जब उनके वृद्ध पिता बीमार पड़े थे, तो सिद्धान्त सरस्वती ने मिथ्या वैष्णवों की इस चुनौती को स्वीकार किया कि कृष्णभावनामृत के प्रचारक के लिए उनकी जाति में जन्म लेना पहली अनिवार्यता है। जाति-भावना के प्रति सचेत ब्राह्मण-समाज इस बात से बहुत कुपित था कि भक्तिविनोद ठाकुर ने शास्त्रों से अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये थे कि जन्म-भेद का विचार किये बिना भी कोई ब्राह्मण-वैष्णव हो सकता है। इन स्मार्त ब्राह्मणों ने वैष्णवों की हीनता सिद्ध करने के उद्देश्य से एक वाद-विवाद का आयोजन किया। बीमार पिता की ओर से भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने "ब्राह्मण और वैष्णव के मध्य निर्णायक अन्तर" शीर्षक से एक लेख लिखा और उसे अपने पिता के सम्मुख प्रस्तुत किया। अस्वस्थ होते हुए भी भक्तिविनोद ठाकुर आह्लादित हो उठे कि लेख के तर्कों से स्मार्तों की चुनौती भलीभाँति ध्वस्त हो जायेगी।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती तब मिदनापुर गये, जहाँ देश-भर के पंडित तीन-दिवसीय वाद-विवाद के लिए इकट्ठे हुए थे। कुछ स्मार्त पंडितों का, जो बोलने वालों में पहले थे, दावा था कि शूद्र परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति चाहे उसकी दीक्षा आध्यात्मिक गुरु से ही क्यों न हुई हो, कभी पवित्र नहीं बन सकता और श्रीविग्रह की पूजा करने या शिष्यों को दीक्षा देने का ब्राह्मण का कार्य नहीं कर सकता। अन्त में सिद्धान्त सरसवती ने अपना भाषण दिया। उन्होंने वेदों के हवाले से ब्राह्मणों का गौरव-गान करते हुए अपना भाष्य आरम्भ किया। इस पर स्मार्त विद्वान बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन जब वे ब्राह्मण बनने के लिए वास्तविक क्षमताओं तथा वैष्णवों के गुण और दोनों के सम्बन्ध के बारे में बताने लगे और इस बात का विवेचन करने लगे कि वैदिक साहित्य के अनुसार आध्यात्मिक गुरु बनने और शिष्यों को दीक्षा देने के योग्य कौन है, तब वैष्णव-विरोधियों की प्रसन्नता लुप्त हो

गई। अन्त में भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ने शास्त्रों से यह भलीभाँति प्रमाणित कर दिया कि यदि कोई शूद्र के रूप में जन्म लेता है, लेकिन वह ब्राह्मण के गुण प्रदर्शित करता है, तो उसके शूद्र-जन्म के बावजूद उसका ब्राह्मण के रूप में सम्मान होना चाहिए। और यदि कोई ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेता है, किन्तु शूद्र की तरह आचरण करता है, तो वह ब्राह्मण नहीं है। उनके भाषण के बाद सिद्धान्त सरस्वती को सभा के अध्यक्ष ने बधाई दी और उनकी चारों ओर हजारों लोग इकट्ठे हो गये। यह वैष्णव-धर्म की विजय थी।

सन् १९१४ ई. में पिता का और १९१५ ई. में आध्यात्मिक गुरु का निधन होने के बाद सिद्धान्त सरस्वती ने भगवान् चैतन्य का मिशन जारी रखा। *सज्जन-तोषणी* के सम्पादन का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया और कृष्ण नगर में भगवत् प्रेस की स्थापना की। तदनन्तर १९१८ ई. में मायापुर में गौरकिशोर दास बाबाजी के चित्र के सामने बैठकर उन्होंने अपने को संन्यास आश्रम में दीक्षित किया। उस समय उन्होंने भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज नाम से संन्यास की उपाधि धारण की।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने व्रत लिया कि वे अपने प्रिंटिंग प्रेस का प्रयोग सर्वोत्तम साधन के तौर पर कृष्णभावनामृत के प्रसार के लिए करेंगे। वे प्रिंटिंग प्रेस को एक बृहत् मृदंग समझते थे। यद्यपि मृदंग का प्रयोग महाप्रभु चैतन्य के काल में भी कीर्तन के साथ होने की परम्परा थी और यद्यपि स्वयं भक्तिसिद्धान्त सरस्वती भी कीर्तनियों का नेतृत्व करते थे और मृदंग बजाते और गाते हुए उनके दलों को सड़कों पर भेजते थे, लेकिन ऐसे कीर्तन मकानों के एक-दो ब्लाकों तक ही सुनाई देते थे। परन्तु प्रिंटिंग प्रेस के बृहत् मृदंग के माध्यम से महाप्रभु चैतन्य का सन्देश विश्वभर में प्रसारित किया जा सकता था।

अधिकतर साहित्य, जिसका पाठ अभय ने आरम्भ किया, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा १९१५ ई. में स्थापित किये गये भगवत् प्रेस में छपा था। भगवत् प्रेस से *चैतन्य-चरितामृत* छपा, जिस पर भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टीका थी। भगवत् प्रेस ने ही विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका सहित *भगवत्-गीता* छापी और एक के बाद एक भक्तिविनोद ठाकुर की पुस्तकें प्रकाशित की। ये पुस्तकें भगवान् चैतन्य महाप्रभु की, जो लगभग पाँच शताब्दी पूर्व हुए थे, आध्यात्मिक बपौती स्वरूप थीं।

अभय बचपन से भगवान् चैतन्य के भक्त थे और वे बहु-ख्यात *चैतन्य-चरितामृत* और *चैतन्य-भागवत्* धर्म-ग्रंथो के द्वारा भगवान् चैतन्य के जीवन से परिचित थे। वे भगवान् चैतन्य को केवल एक ऐसे अत्यन्त भाव-प्रवण विशुद्ध भक्त के रूप में ही नहीं जानते थे, जिसने पवित्र नाम के मंत्रोच्चार को भारत-भर में फैलाया था, वरन् उन्हें स्वयं श्रीकृष्ण के सीधे अवतार-रूप में भी जानते थे, ऐसे अवतार रूप में जिसमें राधा और कृष्ण दोनों का मेल था। लेकिन अब प्रथम बार अभय को ऐसे साहित्य की निधि के संसर्ग में

आने का अवसर मिला, जिसका संग्रह महाप्रभु के निकट सहवासियों और अनुयायियों ने किया था और जो परम्परा से आगे बढ़ती आई थी और जिसका विस्तार महान् अधिकारियों ने किया था। भगवान् चैतन्य के निकट अनुगामियों—श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी और दूसरों ने वैदिक शास्त्रों पर आधारित कई ग्रंथों का संकलन किया था, जिनसे निर्णायक रूप में प्रमाणित होता था कि भगवान् चैतन्य के उपदेश वैदिक ज्ञान का सारभूत अंग है। बहुत से ग्रंथ अब भी प्रकाशित नहीं हुए थे, किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती कई प्रेसों की स्थापना पर तुले थे, जिससे समग्र जन-समूह के लिए बृहत् मृदंग की ध्वनि उन्मुक्त की जा सके।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं का निष्कर्ष समझा रहे थे कि भगवान् कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उनके पवित्र नाम के उच्चारण को अन्य सभी धार्मिक प्रचारों की अपेक्षा अधिक बल दिया जाना चाहिए। पूर्व युगों में भगवान् की प्राप्ति के लिए अन्य साधन उपलब्ध थे लेकिन वर्तमान कलियुग में केवल हरे कृष्ण का कीर्तन ही प्रभावकारी हो सकता है। *बृहन्नारदीय पुराण* और *उपनिषदों* जैसे शास्त्र-ग्रंथों के आधार पर भक्तिविनोद ठाकुर ने विशेष रूप से महामंत्र का उद्धरण दिया था : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में स्वयं कहा था कि उन्हें प्राप्त करने का एकमात्र साधन भक्ति है : "सभी धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सभी पापकर्मों के फलों से मुक्ति दूँगा। डरो मत।"

अभय इन श्लोकों को जानते थे, वे उनका उच्चारण भी जानते थे, वे गीता का मर्म समझते थे। लेकिन जब उन्होंने महान् आचार्यों के लेखों को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा, तो उन्हें भगवान् चैतन्य के मिशन (उद्देश्य) के क्षेत्र का नये सिरे से बोध हुआ। अब अपनी वैष्णव बपौती की गहराई भी उनकी समझ में आने लगी और एक ऐसे युग के लोगों का अधिकाधिक कल्याण करने की उसकी क्षमता का भी उन्हें ज्ञान हुआ, जिसके भाग्य में उत्पात ही उत्पात लिखे हों।

• • •

श्रील भक्तिसिद्धान्त प्राय: यात्रा पर रहते और अभय अपने परिवार और कारोबार में व्यस्त थे, अत: दूसरी भेंट का आयोजन सम्भव नहीं हुआ। तो भी पहली ही भेंट से अभय ने भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया था, और वे हमेशा उनके बारे में सोचते रहते : "मैं ऐसे अच्छे साधु-स्वभाव वाले पुरुष से मिला हूँ।" जब भी समय होता, अभय श्रील भक्तिसिद्धान्त के शिष्यों को ढूँढ़ निकालते, जो गौड़ीय मठ के सदस्य थे।

जहाँ तक गाँधीजी के आन्दोलन का सम्बन्ध था, गाँधीजी को गहरा धक्का पहुँचा, जब उनके अहिंसावादी अनुयायियों ने एक प्रतिवाद के दौरान भयंकर भूल की और वे हिंसाकांड पर उतर आये। अंग्रेजों ने इस अवसर का लाभ उठाकर गाँधीजी को कैद कर लिया और उन्हें छह वर्ष जेल में रहने की सजा दे दी। यद्यपि उनके अनुयायी तब भी उनका सम्मान करते रहे, किन्तु राष्ट्रीयता का आन्दोलन बहुत-कुछ अपना वेग खो बैठा था। पर इसके बावजूद भी अभय की अभिरुचि अब उधर नहीं रह गई थी। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने उनके इस विचार पर विजय पा ली थी कि प्राथमिकता भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता को मिलनी चाहिए। उन्होंने अभय की मूल कृष्ण-चेतना को जगा दिया था और अभय को अब विश्वास हो गया था कि भक्तिसिद्धान्त का लक्ष्य ही वास्तव में प्राथमिकता थी। श्रील भक्तिसिद्धान्त ने उन्हें प्रचार करने के लिए आमंत्रित किया था और उसी क्षण से अभय की इच्छा श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के एक शिष्य के रूप में गौड़ीय मठ में शामिल होने की हो गई थी। किन्तु अब राष्ट्रीय रुझाण के स्थान पर उनकी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उनके मार्ग में आ रही थीं। वे अब यह नहीं सोच रहे थे कि "पहले हम स्वतंत्र राष्ट्र हो जाँए और बाद में हम भगवान् चैतन्य के बारे में प्रचार करें।" अब वे यह सोच रहे थे कि "दूसरों की तरह मैं शामिल नहीं हो सकता। मेरे ऊपर मेरी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ हैं।"

और परिवार वृद्धि पर था। सन् १९२१ ई. में उनकी पत्नी को पहला बच्चा हुआ, जो लड़का था। और आगे और भी बच्चे होंगे और अधिक आमदनी की जरूरत होगी। धन पैदा करने का मतलब था समय और शक्ति का बलिदान और कम से कम बाहरी तौर पर इसका तात्पर्य था, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के मिशन से विरत होना। भारतीय संस्कृति में परिवार की संस्था का सम्मान सर्वाधिक था और तलाक के बारे में तो कोई जानता भी न था। महान् आर्थिक कठिनाई में होने पर भी लोग अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहते थे। यद्यपि अभय को इस बात का दुख था कि वे गौड़ीय मठ में संन्यासी शिष्य नहीं थे, किन्तु विवाह के बाद इतनी जल्दी अपनी युवा पत्नी को छोड़ने की बात उन्होंने कभी नहीं सोची थी। गौर मोहन को प्रसन्नता थी कि उनके पुत्र में वैष्णव गुरु के प्रति आकर्षण हो गया था, लेकिन ऐसी आशंका नहीं थी कि अभय अपनी जिम्मेदारियों का त्याग करके संन्यासी बन जायेंगे। वैष्णव अपनी पत्नी और परिवार के साथ रह सकता था, घर पर वह आध्यात्मिक जीवन का अभ्यास कर सकता था और एक सक्रिय प्रचारक भी बन सकता था। अभय को ऐसा उपाय निकालना था कि पारिवारिक व्यक्ति होते हुए वे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकें।

अभय ने सोचा कि यदि कारोबार में उन्हें सफलता मिल जाए, तो वे न केवल अपने

परिवार के पोषण पर धन खर्च कर सकते थे, वरन् कृष्णभावनामृत के प्रसार के श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के मिशन में भी सहायक हो सकते थे। एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी भी की थी कि अभय भारत के सबसे धनी व्यक्तियों में से एक होंगे। लेकिन अपनी वर्तमान आय से वे परिवार के पोषण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकते थे। उन्होंने सोचा कि यदि वे अपना कोई निजी धंधा कर लें, तो शायद हालत अच्छी हो जाये।

अभय ने अपनी भावनाओं को डॉ. बोस के सामने प्रकट किया, जो एक सहानुभूतिपूर्ण पिता की तरह उनकी बात सुनते रहे। तब उन्होंने अभय को सुझाव दिया कि वे पूरे उत्तरी भारत के लिए उनके एजेंट बन जाँए। अभय डॉ. बोस की फैक्टरी से थोक भाव पर दवाएँ, लिनेमेण्ट, परिष्कृत स्पिरिट, दाँत का मंजन और अन्य वस्तुएँ खरीद सकते थे और सारे उत्तरी भारत में दूर दूर तक यात्रा करके अपना निजी धंधा जमा सकते थे। अभय को बोस की फैक्टरी में इतना अनुभव हो गया था कि वे अपनी ओर से कुछ दवाएँ तथा अन्य वस्तुएँ बनाकर उन्हें बेचने का प्रयास भी कर सकते थे। डॉ. बोस और अभय ने तय किया कि केन्द्र में स्थित इलाहाबाद नगर को अभय का मुख्यालय बनाना ठीक रहेगा।

• • •

सन् १९२३ ई. में अभय, उनकी पत्नी और बच्चा कलकत्ता से उत्तर-पश्चिम में १२ घंटे की ट्रेन यात्रा के बाद इलाहाबाद पहुँचे। अँग्रेजों ने एक बार इलाहाबाद को संयुक्त प्रान्त की राजधानी बनाया था। उन्होंने वहाँ बहुत सी अच्छी इमारतें बनाई थीं, जिनमें उच्च न्यायालय और विश्वविद्यालय की इमारतें भी थीं। योरोपीय और नेहरू जैसे सम्पन्न भारतीय परिवार नगर के पक्की सड़कों और रोशनी वाले आधुनिक भाग में रहते थे। शहर का एक दूसरा भाग भी था जो पुराना था, जिसमें पुरानी संकरी सड़कें थीं, जिनकी दोनों ओर घने मकानों और दुकानों की पंक्तियाँ थीं। इस भाग में बहुत से बंगाली रहते थे। अभय ने इसी भाग में अपने परिवार को बसाने का फैसला किया।

अभय ने इलाहाबाद का, जो परम्परा से प्रयाग कहलाता था, चयन इसलिए किया कि वह कारोबार के लिए अच्छा स्थान हो सकता था। वह भारत के सबसे प्रसिद्ध तीर्थस्थलों में से भी एक था। भारत की तीन सर्वाधिक पवित्र नदियों—गंगा, यमुना, सरस्वती—के संगम पर स्थित इलाहाबाद भारत के दो आध्यात्मिक समारोहों की स्थली था, जिसमें असंख्य लोग भाग लेते थे। ये समारोह थे वार्षिक माघ-मेला और बारह वर्ष में एक बार लगने वाला कुंभ-मेला। आध्यात्मिक शुचिता की खोज में देश-भर से लाखों तीर्थ-यात्री

हर साल माघ जेनवरी की पूर्णिमा को यहाँ इकट्ठे होते थे और तीनों पवित्र नदियों के संगम में स्नान करते थे।

अभय के किराए के घर में, जो ६०, बादशाही मंडी था, कुछ ही कमरे थे। अपने कारोबार के लिए उन्होंने जान्सटनगंज रोड के व्यावसायिक केन्द्र में एक छोटी-सी दुकान किराए पर ले ली। उसमें उन्होंने प्रयाग फार्मेसी नाम से अपनी डिसपेंसरी खोली और बोस लेबोरेटरी में निर्मित दवाएँ, टिंक्चर, सिरप और दूसरी वस्तुएँ बेचना आरम्भ किया। उनकी भेंट इलाहाबाद के एक चिकित्सक डॉ. घोष से हुई, जिन्होंने उनके धंधे में हिस्सेदार बनने में अभिरुचि दिखाई। इसलिए अभय ने उनसे अपनी फार्मेसी में सेवा तत्पर चिकित्सक के रूप में काम करने और अपना कार्यालय प्रमाण फार्मेसी में स्थानान्तरित करने को कहा। डॉ. घोष राजी हो गये और उन्होंने अपनी दुकान 'ट्रापिकल फार्मेसी' बन्द कर दी।

प्रयाग फार्मेसी में डॉ. घोष रोगों का निदान करते और दवाएँ लिख देते। अभय तदनुसार दवाएँ देते। डॉ. घोष को दवाओं की बिक्री पर पच्चीस प्रतिशत कमीशन मिलता। अभय और डॉ. घोष में मित्रता हो गई। वे एक दूसरे के घर जाते और एक दूसरे के बच्चों को अपने ही परिवार के सदस्य समझते। प्रायः वे लाभांश बढ़ाने के अपनी आकांक्षाओं पर भी विचार-विमर्श करते।

डॉ. घोष : *अभय व्यवसायी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। हम स्वभाव से ही धर्म-भीरू थे। हमारे यहाँ हर घर में एक छोटा मन्दिर होता है और उसमें अर्चाविग्रह का होना जरूरी है। लेकिन वे हमेंशा धंधे के बारे में और परिवार का खर्च चलाने के बारे में बात करते।*

यद्यपि घर पर अभय धोती-कुर्ता पहनते, किन्तु काम-धंधे के सिलसिले में कभी-कभी वे कमीज और पतलून धारण कर लेते। वे तीस वर्ष की अवस्था के आसपास, सुन्दर दिखने वाले, पूरी मूंछ रखने वाले और फुर्तीले नवयुवक थे। अब उनके और राधारानी दे के दो बच्चे थे—इलाहाबाद में आने के एक वर्ष बाद उनको एक लड़की पैदा हुई थी। गौर मोहन, जो अब पचहत्तर वर्ष के थे, उनके साथ रहने के लिए इलाहाबाद आ गये थे, और उनकी विधवा बहिन राजेश्वरी भी अपने लड़के तुलसी के साथ आ गई थी। गौर मोहन अधिकतर घर पर रहते, माला फेरते हुए हरे-कृष्ण मंत्र का जप करते और कृष्ण के शालग्राम-शिला-विग्रह की पूजा करते। उन्हें संतोष था कि अभय का धंधा ठीक से चल रहा है और अभय को संतोष था कि उनके पिताजी उनके साथ आराम से रह रहे हैं और स्वतंत्रतापूर्वक कृष्ण की पूजा-अर्चा में लगे हैं।

अभय का जीवन बहुत व्यस्त था। वे अपना धंधा बढ़ाने पर तुले थे। प्रातः आठ बजे तक वे अपनी फार्मेसी पहुँच जाते, जहाँ उनकी भेंट डॉ. घोष से होती और दिन का काम शुरू हो जाता। दोपहर में वे घर आते और तीसरे पहर देर से फिर फार्मेसी जाते। उन्होंने

एक बड़ी बुइक गाड़ी आठ हजार रुपए में खरीद ली थी। उसे उन्होंने स्वयं कभी नहीं चलाया, वरन् अपने भतीजे को, जो अच्छा ड्राइवर था, टैक्सी के धंधे में उपयोग करने के लिए दे दिया था। कभी कभी अभय धंधे के दौरे में अपनी गाड़ी में यात्रा पर निकलते; तब उनका भतीजा उनके ड्राइवर का काम करता।

संयोग से मोतीलाल नेहरू और उनके लड़के जवाहरलाल नेहरू दोनों प्रयाग फार्मेसी के ग्राहक थे। जवाहरलाल नेहरू हमेशा पाश्चात्य दवाएँ मांगते थे; इसलिए अभय को लगा कि जवाहरलाल हिन्दुस्तानी तरीकों को जरूर घटिया समझते होंगे। एक बार जवाहरलाल नेहरू अभय के पास राजनीतिक कार्यों के लिए चंदा मांगने गये; अभय कर्तव्यनिष्ठ व्यवसायी थे, अत: उन्होंने चंदा दे दिया। दिन में जो ग्राहक या मित्र दुकान में आ जाते, अभय उनसे बातें करते और वे उन्हें बहुत सी चीजों के बारे में बताते। एक अवकाश-प्राप्त सैनिक अधिकारी अभय को प्रथम विश्व युद्ध के सम्बन्ध में कहानियाँ सुनाया करते थे। उन्होंने बताया कि किस प्रकार फ्रांस में मार्शल फोश ने एक दिन हजारों बेलजियम शरणार्थियों को मार डालने का आदेश इसलिए दिया कि युद्ध क्षेत्र में उन्हें खाना देना भार सिद्ध हो रहा था। एक मुसलमान सज्जन जो अफगानिस्तान के एक शाही परिवार के सदस्य थे, नित्य अपने लड़के के साथ अभय की दुकान पर आते और गप्पें लगाते। अभय दुकान पर आने वालों की बातें सुनते, उनसे अच्छी तरह वार्तालाप करते, उन्हें दवाइयाँ देते, लेकिन उनका मन भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से भेंट की ओर हमेशा वापस भागा करता। भक्तिसिद्धान्त उन्हें कैसे लगे थे, उनकी भाव-भंगिमा कैसी थी, उन्होंने क्या कहा था—ये सारी बातें उनके मन में बार-बार आती थीं।

रात में अभय अपनी स्त्री और बच्चों के पास लौटते। राधारानी पतिव्रता और साध्वी पत्नी थीं, जो अपना समय भोजन बनाने, सफाई करने और दोनों बच्चों के पालन-पोषण में बितातीं थीं। लेकिन उनकी रुचि अपने पति के आध्यात्मिक कार्य-कलापों में भाग लेने की ओर नहीं थी। अभय भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के प्रति अपनी भावनाओं को उनके सामने प्रकट नहीं कर सकते थे।

• • •

अभय, उनकी स्त्री, उनके दोनों बच्चे, गौर मोहन, अभय के छोटे भाई कृष्ण चरण, अभय की विधवा बहिन राजेश्वरी और उनका पुत्र तुलसीदास,—सभी इलाहाबाद के एक स्टूडियो में पूरे परिवार का चित्र खिचाने गये। फोटो में अभय तीस के लगभग लगते हैं। वे दुबले-पतले, साँवले रंग के हैं और पूरी मूँछें रखे है। उनका मस्तक प्रशस्त है, आँखें निर्मल श्याम वर्ण की है। वे सफेद धोती कुर्ता और सादे काले चप्पल पहने हैं। वे कुर्सी

पर बैठे हैं, उनकी पत्नी पीछे खड़ी है—रंगीन किनारे की सफेद खद्दर की साड़ी में आकर्षक युवती के रूप में। उनकी दुबली बाँह अभय के सिर के पीछे कुर्सी पर रखी है, छोटे-से हाथ से वे कुर्सी का सिरा पकड़े है। बायाँ हाथ बगल में लटक रहा है, उसकी मुट्ठी बंधी है। वह नंगे पाँव है। अभय बाएँ हाथ से अपने दो साल के प्रफुल्लित बच्चे 'पाचा' (प्रयागराज) को, जो अंगों को ऐंठ-सा रहा है, अपनी गोद में शान्त कर रहे हैं। बच्चे की छोटी टाँगें और नंगे पैर माँ के घुटनों से लगे हैं। बच्चे को गोद में लिए हुए अभय कुछ प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। अभय एक सुन्दर भारतीय लगते हैं, उनकी पत्नी आकर्षक महिला; दोनो युवा हैं।

अभय के पीछे उनका भाँजा तुलसी और उनके भाई कृष्णचरण खड़े हैं। उनकी दाहिनी ओर सिरे पर उनकी बहन राजेश्वरी विधवा की सफेद साड़ी पहने बैठी है। उनकी गोद में अभय की लड़की सुलक्ष्मण है। वह भी अपने अंगों को ऐंठ रही है। उसके पैर फोटोग्राफर की ओर फैले हैं। बीच में गौर मोहन बैठे हैं। उनके चेहरे पर सिकुड़नें हैं और अवस्था के कारण सारा शरीर निर्बल है। वे भी सफेद कुर्ता और धोती पहने हैं। उनके हाथ, शायद अंगघात के कारण, गोद में हिल-से रहे हैं। वे नाटे, लघु-काय और वृद्ध हैं।

• • •

अभय पूरे उत्तर भारत की यात्रा प्राय: करते थे। वे अपनी बिक्री बढ़ाने पर तुले हुए थे। सप्ताह में कई दिन बाहर रहना उनके लिए सामान्य बात थी। कभी-कभी वे एक साथ एक-दो सप्ताह के लिए निकल जाते थे और एक शहर से दूसरे शहर की यात्रा करते थे। ओषधि-निर्माण-उद्योग तब भारत वर्ष में आरम्भ हो ही रहा था और कलकत्ता की बोस-लैबोरेटरी से आये योग्य एवं सज्जन एजेंट से डॉक्टरों, अस्पतालों और दवाखानों के लोगों को दवाएँ खरीदना अच्छा लगता था।

अभय ट्रेन से यात्रा करते और होटलों में ठहरते थे। यात्रा में, जो घर से दूर रहने की भावना पैदा होती, वह उन्हें पसन्द थी, किन्तु यात्रा की मुख्य प्रेरणा पुराने ग्राहकों के संपर्क और नये ग्राहकों की प्राप्ति से मिलती थी। यही उनका धंधा था। बिना आरक्षण के तीसरे दर्जे की यात्रा प्राय: असुविधाजनक होती; बेंचों पर बैठना पड़ता, जो अक्सर गंदी होतीं, और बिना आरक्षण के यात्रियों की भीड़ रहती। लेकिन अभय इसी हालत में हर सप्ताह सैकड़ों मील की यात्रा करते। गाड़ी जब एक शहर से दूसरे शहर को चलती रहती तो वे लाइन की दोनों ओर के असंख्य छोटे गाँवों और सामने फैले मैदानों को देखा करते। हर स्टेशन पर उन्हें चाय बेचने वालों की आवाज सुनाई देती जो गाड़ी की खिड़कियों के सामने "चाय! चाय!" की आवाज लगाते हुए आगे बढ़ते जाते। अंग्रेजों ने देश में चाय का

प्रवेश कराया था और अब लाखों लोगों को विश्वास हो गया था कि सवेरे की एक छोटा गिलास गरम चाय के बिना उनका काम नहीं चलेगा। पक्के वैष्णव होने के कारण अभय चाय कभी न छूते, लेकिन उनके लिए यह अप्रसन्नता का विषय था कि उनकी पत्नी नियमित चाय पीने वाली हो रही थीं।

यद्यपि अभय की एक योरोपीय व्यवसायी की भाँति वेश-भूषा धारण करने की आदत थी, लेकिन अपने पक्के वैष्णव सिद्धान्तों में उन्होंने ढिलाई कभी नहीं आने दी। उनके अधिकतर बंगाली साथी मछली खाने लगे थे, लेकिन अभय होटलों में भी अवैष्णव भोजन खाने से बचने में हमेशा सावधान रहते। एक बार बम्बई के एक निरामिष होटल में, जिसका नाम अम्पायर हिन्दू होटल था, उनके सामने प्याज परसा गया था और कभी-कभी होटल के लोग लहसुन, छत्रा (मशरूम) या अंडे तक परोस देते थे, लेकिन अभय हमेशा ऐसे पदार्थों को खाने से अपने को सावधानीपूर्वक बचा लेते थे। घर पर पड़ी आदत के अनुसार वे सवेरे ही ठंडे पानी से नहा लेते थे। यह नियम वे पूरा साल निभाते। जब वे सहारनपुर में थे, तो कठोर जाड़े की ऋतु में भी वे वैसा ही करते थे, जिसे देखकर होटलवाला स्तंभित रह जाता था।

अभय अपनी यात्राओं के दौरान बहुत से लोगों से बातें करते थे। एक बार ढाका में एक डॉक्टर ने उन्हें बताया कि आफिस जाते हुए मार्ग में उसने एक किसान को अपने मित्र से बात करते हुए देखा और किसान की खाँसी की आवाज से उसने कह दिया कि उसकी मृत्यु कुछ ही घंटों में हो जायेगी। एक दूसरे डॉक्टर ने उन्हें बताया कि वह अभी-अभी एक निमोनिया के रोगी को देखकर लौटा है जो प्रकृति और आयुर्विज्ञान के नियमों की अवहेलना करके जीते जा रहा था। गया में उनकी भेंट एक मुसलमान डॉक्टर से हुई, जिसका रोना यह था कि सबसे अच्छी दवा देने के बावजूद उसका रोगी अभी अभी मर गया है। डॉक्टरी पेशा के लोगों से ऐसे विवरण सुनकर अभय को विश्वास हो गया कि भगवान् की इच्छा के बिना किसी को बचाया नहीं जा सकता। ऐसा नहीं है कि दवाएँ बेचने को वे जनहितैषी कार्य मानते हों; भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने उनके मन में विश्वास जमा दिया था कि किसी व्यक्ति को बचाने का सर्वोत्तम उपाय उसे कृष्णभावनामृत देना है। अभय की दवाइयाँ तो केवल व्यवसाय के लिए थीं।

१९२५ ई. की बात है; एक व्यावसायिक यात्रा में वे आगरा होकर निकले, जो वृन्दावन से केवल ६० किलोमीटर दूर है। इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने पवित्र वृन्दावन की प्रथम तीर्थयात्रा की और इस प्रकार अपने बचपन की अभिलाषा पूरी की। वृन्दावन के दर्शन से उन्हें प्रसन्नता हुई, लेकिन वहाँ वे केवल एक-दो दिन ही रह सके; विक्रय-कार्य से एक दिन भी अलग रहना उनके लिए कठिन था। श्रद्धालु तीर्थयात्री के रूप

में अभय ने कुछ मन्दिरों के दर्शन किये, विशेषकर उन मुख्य मन्दिरों के जो महाप्रभु चैतन्य के अनुयायियों ने स्थापित किये थे, लेकिन उन्हें आगे बढ़ जाना पड़ा।

यात्रा में खतरे भी थे। एक बार वे मथुरा स्टेशन पर गाड़ी के डिब्बे में बैठे थे कि अचानक एक बन्दर घुसा और उनका सब सामान उठा ले गया। एक दिन बड़े सवेरे दो पहियों वाली एक घोड़ा-गाड़ी में वे कानपुर जा रहे थे। घोड़ा बड़ी तेजी से भाग रहा था। अकस्मात् सड़क के बीच में पड़े कूड़े के ढेर से वह टकरा गया। घोड़ा-गाड़ी उलट गई। घोड़ा, ड्राईवर और गाड़ी सभी उस ढेर पर जा गिरे; अभय हवा में उछाल खा गये। लेकिन जब वे जमीन पर आये, उन्हें कोई चोट नहीं लगी, उन्हें ऐसा लगा मानों वे एक सीट से दूसरी सीट पर बैठ गये हों। चूँकि वे चुपचाप बैठे थे और कुछ बोले नहीं, इसलिए ड्राइवर ने समझा कि वे बेहोश हो गये हैं और वह चिन्ता में पड़ गया। लेकिन वे बिल्कुल ठीक थे। ड्राइवर ने इसे एक आश्चर्य ही माना, क्योंकि गाड़ी से वे बहुत जोर से फेंके गये थे। अभय का विचार था कि उन्हें कृष्ण भगवान् ने बचा लिया है। उन्हें इस तरह की अन्य घटनाएँ याद आईं। एक घटना बचपन की थी जब उनके कपड़ों में आग लग गई थी। कृष्ण भगवान् ने हमेशा उनकी रक्षा की थी।

अभय पाँच वर्ष तक इलाहाबाद से बाहर लम्बी यात्राएँ करते रहे और जब वे घर आते, तो घंटों दवाखाने में बिताते। लेकिन वे पत्नी को भी समय देते और बच्चों के साथ खेलते।

श्रील प्रभुपाद : *जब मेरा लड़का लगभग दो साल का था, तब वह बहुत चंचल था। वह कोई न कोई शरारत करता ही रहता। मेरे मित्र मेरे घर आते और बच्चे को पाचा कहकर बुलाते, "पाचा, अगर तुम एक मिनट तक शान्त बैठो, तो मैं तुम्हें एक भेंट दूँगा।" लेकिन बच्चा ऐसा न कर पाता। वह एक मिनट के लिए भी शान्त नहीं रह सकता था। घर में एक टेबल फैन था और पाचा उसे छूना चाहता था। मैंने कहा, "नहीं, नहीं, उसे मत छुओ।" लेकिन उसने उसे छूने की फिर कोशिश की; इसलिए मेरे मित्र ने कहा, " फैन की गति धीमी कर दो और उसे छूने दो।" तब मैंने प्लग निकाल दिया और उसने पंखे को छू लिया। उसे क्षति नहीं पहुँची, लेकिन वह उसकी अगुंली से टकराया और जोर की आवाज पैदा हुई—टुंग...। उसके बाद उसने उसे नहीं छुआ। मैं छूने को कहता फिर भी वह न छूता।*

ज्योंही उनकी बेटी, सुलक्ष्मण बोलने लगी, वे उसे गुरु-अष्टकम् प्रार्थना का बंगाली अनुवाद सिखाने लगे। उसका आरम्भ है, "आध्यात्मिक गुरु दया के सागर से आशीर्वचन प्राप्त कर रहे हैं। जैसे बादल जंगल में लगी आग को बुझाने के लिए जल-वृष्टि करता है, वैसे ही आध्यात्मिक गुरु भौतिक जीवन, पुनर्जन्म और मृत्यु की धधकती आग को बुझाते हैं।"

अनिवार्य यात्राओं को छोड़कर अभय घर पर रहते और अपने परिवार को सन्तुष्ट रखते। अपने धंधे में वे परिश्रमपूर्वक लगे रहे और वह उन्नति करता गया।

• • •

जनवरी, सन् १९२८ ई. के कुंभ मेले का अवसर था। गौड़ीय मठ के भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज कुछ लोगों के साथ इलाहाबाद आये थे। एक दिन वे सब बिना सूचना के प्रयाग फार्मेसी जा पहुँचे, और अभय ने उन सबको अचानक इतने सालों बाद पुनः देखा। "ओह! ये वे ही लोग हैं, जिन्हें मैं पहले देख चुका हूँ," उनके मुँह से निकला, "गौड़ीय मठ के लोग, हाँ, अन्दर आइये।"

भक्तिप्रदीप तीर्थ स्वामी वही संन्यासी थे, जो कलकत्ता में नरेन्द्रनाथ मल्लिक के घर पर गये थे। उनका वह आगमन अभय के भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के पास जाने का कारण बना था। विनम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़कर वे अभय के सामने खड़े हो गये। वे गेरुए रंग के साधारण खादी वस्त्र पहने थे, सिर मुंडा था, उसके पिछले भाग में शिखा-रूप में रोमगुल्लक था, माथे पर वैष्णव तिलक लगा था। तीर्थ महाराज अभय से बोले, "हम यहाँ के लिए नये है। हम इलाहाबाद में एक मन्दिर स्थापित करने जा रहे है। हमने आपका नाम सुना है, इसलिए हम आपके पास आये हैं। कृपा करके हमारी सहायता कीजिए।"

अभय हर्षित हुए : "हाँ, मैं आपकी सहायता करूँगा।" जितना धन वे दे सकते थे, उन्होंने दिया और उसके बाद उन्होंने तीर्थ महाराज का परिचय डॉ. घोष से कराया। डॉ. घोष ने भी धन दिया।

अभय ने गौड़ीय मठ के भक्तों को भजन और भाषण के लिए अपने घर पर आमंत्रित किया; उनकी पत्नी को प्रसाद तैयार करना था। आमंत्रण स्वीकार हो गया, लेकिन जब वे लोग अभय के घर पहुँचे तो एक गलतफहमी हो गई। गौर मोहन, जो निर्बल थे, अपने ऊपर के कमरे में रह रहे थे। अभय ने पुकारा, "कृपया नीचे आ जाइए। गौड़ीय मठ के भक्तों की बैठक है।" गौर मोहन नीचे उतर आये। लेकिन जब उन्होंने साधुओं को देखा तो उन्हें गलतफहमी हो गई कि वे ऐसे ही किसी सधुक्कड सम्प्रदाय के शून्यवादी लोग हैं। अभय ने जो कुछ कहा था, वह उन्हें ठीक से सुनाई नहीं पड़ा था। गौर मोहन बैठ गये, लेकिन उन्होंने पीत-कपड़े पहने साधुओं को उदासीन भाव से देखा और कुछ व्यंग्योक्ति भी की। अभय, जो उत्साह से भरे थे कि उन्हें वैष्णवों के संसर्ग में आने और उनके मुख से श्रीकृष्ण-कथा सुनने का अवसर मिला है, अपने पिता के ऐसे व्यवहार को नहीं समझ सके। पर ज्योंही भक्तिप्रदीप तीर्थ स्वामी ने अपना भाषण आरम्भ किया, गौर मोहन की समझ में सारी बात आ गई। "ओह, वे वैष्णव हैं।" उनके मुँह से आवाज आई। वृद्ध और

निर्बल तो वे थे ही, वे उनके चरणों पर तुरन्त लेट गये : "महोदय, मैंने आपको गलत समझा था। मैंने सोचा, आप किसी अन्य सम्प्रदाय के संन्यासी हैं। मुझे आपके दर्शनों से प्रसन्नता है।"

माघ-मेला के बाद प्रदीप तीर्थ स्वामी तो चले गये; लेकिन भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के पाँच-छह ब्रह्मचारी शिष्य इलाहाबाद में रुककर एक छोटे मठ का संचालन करने लगे। वे श्रीविग्रह की पूजा करते, संध्या-समय कीर्तन और भाषण का कार्यक्रम रखते और स्थानीय लोगों में सक्रियता से प्रचार करते। प्रधान शिष्य अतुलानन्द ब्रह्मचारी इलाहाबाद के नागरिकों के घरों पर जाते और उनसे मठ का ग्राहक-सदस्य बनने का अनुरोध करते; प्रतिमास आठ आने में एक ग्राहक-सदस्य को गौड़ीय मठ की पत्रिका प्राप्त होती थी।

घर-घर ग्राहक बनाने के अभियान में अतुलानन्द ने एक दिन अभय चरण दे के घर का द्वार खटखटाया। अभय ने उनका आतिथ्यपूर्ण स्वागत किया और भेंट में कुछ चावल और फल दिये। वैष्णव-दर्शन के लिए अभय के कान सदा खुले थे और अतुलानन्द के साथ वाद-विवाद में उन्हें आनन्द आता था। अतुलानन्द नियमत: श्रीमान् दे के यहाँ जाते और महाप्रभु चैतन्य तथा *भगवद्गीता* के विषयों पर उनसे वार्तालाप करते। अभय श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के हाल के क्रिया-कलापों के बारे में भी उनसे पूछते। तब तक श्रील भक्तिसिद्धान्त कलकत्ता में गौड़ीय प्रिंटिंग वर्क्स की स्थापना कर चुके थे और अपनी टीका समेत कई खंडों में *श्रीमद्भागवत* का प्रकाशन आरम्भ कर चुके थे। अपने ढाका केन्द्र से उन्होंने *श्री चैतन्य-भागवत* का सम्पादित संस्करण भी प्रकाशित किया था। मद्रास, भुवनेश्वर और पुरी में वे केन्द्र स्थापित कर चुके थे।

अभय की जिज्ञासा का अन्त नहीं था। अतुलानन्द ने उन्हें बताया कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने किस प्रकार १९२५ ई. में एक बड़ा जुलूस निकाला था, जिसने नवद्वीप की पवित्र भूमि की परिक्रमा की थी और जिसमें खूब सजे हुए हाथियों पर श्रीविग्रह विराजमान थे और जिसमें भारत के सभी भागों से आये हुए भक्त शामिल हुए थे। ईर्ष्यालु पेशेवर पुरोहितों ने, जो श्रील भक्तिसिद्धान्त द्वारा सभी जातियों से शिष्य स्वीकार किये जाने के विरोधी थे, जुलूस पर ईंटें और पत्थर बरसाने के लिए बदमाश लगा रखे थे। लेकिन भक्तिसिद्धान्त निडर होकर जुलूस आगे बढ़ाते गये थे। १९२६ ई. में भगवान् चैतन्य के सन्देश का प्रचार करने के लिए वे पूरे देश में घूम आये थे। मायापुर में श्री चैतन्य मठ के विशाल मन्दिर में वे श्रीविग्रहों की स्थापना भी कर चुके थे। एक साल पूर्व उन्होंने *सज्जन-तोषणी* पत्रिका का प्रकाशन तीन भाषाओं में आरम्भ किया था जिनमें एक अंग्रेजी संस्करण भी था। इस भाषा में पत्रिका का नाम *हारमोनिस्ट* था।

कई बार मिलने और गौड़ीय वैष्णव मत के क्रिया-कलापों और दर्शन पर घंटों के

विचार-विमर्श के बाद अतुलानन्द श्रीमान् दे को इलाहाबाद आश्रम में ले गये। उसके कुछ समय बाद ही मठ रामबाग के निकट साउथ मलाका स्ट्रीट में एक किराए के मकान में चला गया। यह मकान अभय के मकान के बिल्कुल निकट था। अब अभय के लिए प्रतिदिन शाम को वहाँ जाना सम्भव हो गया। काम के बाद वे मठ पर जाते, जहाँ वे मृदंग बजाते और इस कला में अपनी दक्षता से ब्रह्मचारियों को चमत्कृत कर देते। उनके साथ वे भजन गाते और कभी-कभी सामूहिक गान में नेतृत्व करते। वे इलाहाबाद के प्रसिद्ध व्यक्तियों को भी मठ में ले आते। ब्रह्मचारियों के लिए अभय के कारण उनके आश्रम में नया जीवन आ गया था और अभय में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के शिष्यों से पुनः मिलाप होने से नया जीवन आ गया था।

• • •

सन् १९३० ई. में गौर मोहन का स्वास्थ्य गिर गया, और उनके परिवार के सदस्य यह सोचकर उनके पास इकठ्ठे होने लगे कि उनका अन्त समय निकट आ गया है। अभय काम से बम्बई गये हुए थे। जब वे इलाहाबाद लौटे तो देर हो चुकी थी। उन्होंने दरवाजा खटखटाया। गौर मोहन ने अपनी लड़की राजेश्वरी से कहा, "दरवाजा खोलो, अभय आ गया है।" राजेश्वरी बोली, "नहीं, वे बम्बई में है।" गौर मोहन ने दुहराया, "मैं कहता हूँ, वह आ गया है। तुम दरवाजा खोलो।" करीब आधी रात का समय था। राजेश्वरी नीचे गई और उसने दरवाजा खोला, और देखा कि उसके भाई सचमुच आ गये हैं। अभय अपने पिता के पास पहुँचे और पूछा, "आप कैसे हैं ?"

गौर मोहन ने उत्तर दिया, "मैं ठीक हूँ। रात में तुम विश्राम करो।"

अगले दिन सवेरे अभय ने डॉक्टर बुलाया। डॉक्टर बोला, "आपके पिताजी जीवित कैसे रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आता। उनकी नाड़ी लगभग बन्द हो चुकी है। कई महीनों से वे बिना खाये जी रहे हैं।"

अभय ने पिता से पूछा, "आप की इच्छा क्या है ? मुझे बताइए।"

"ऐसा क्यों पूछ रहे हो," पिता ने उत्तर दिया, "क्या डॉक्टर ने तुमसे कुछ कहा है ?"

अभय ने कहा, "नहीं, मैं इसलिए पूछ रहा हूँ कि मैं बम्बई में रुका हूँ और आप यहाँ है। इसलिए आपकी यदि कोई इच्छा हो, कोई आकांक्षा हो तो मुझे बताएँ। मैं यहाँ हूँ, मैं यहाँ आपके लिए हूँ।" गौर मोहन ने कहा कि अपनी गाय इलाहाबाद गौड़ीय मठ को दे दो। अस्तु, अभय गाय को उसके बछड़े सहित ले गये और उन्हें मठ को दान कर दिया।

तब उन्होंने अपने पिताजी से पूछा, "आपकी और कोई अभिलाषा है ?"

और उनके पिता ने फिर पूछा, "क्या डॉक्टर ने तुमसे कुछ कहा है ?"

"नहीं, नहीं, मैं केवल इसलिए पूछ रहा हूँ कि मुझे अपने काम पर जाना है।"

तब गौर मोहन ने कहा, "इलाहाबाद के सभी गौड़ीय वैष्णवों को और अन्य वैष्णवों को भी आमंत्रित करो। वे शाम को हरिनाम का गान करें और तुम उन्हें अच्छा भोजन कराओ। यही मेरी इच्छा है।" अभय ने वैसा ही किया, और संध्या-समय 'हरिनाम' आरम्भ हुआ। ग्यारह बजे प्रसाद ग्रहण करके सब चले गये। उसी रात गौर मोहन का देहावसान हो गया।

अभय को अपने पिता की मृत्यु से बड़ा दुख हुआ। पिता ने उन्हें वह सब कुछ दिया था, जो वे चाहते थे। विशुद्ध वैष्णव के रूप में उन्हें पालकर बड़ा किया था और वे सदैव श्री राधा और कृष्ण की पूजा करते रहे थे। यद्यपि अभय बहुत योग्य नवयुवक थे, तथापि अपने सबसे प्रिय संरक्षक और मित्र का अभाव उन्हें बहुत खला। गौर मोहन ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो हमेशा अभय का मार्ग-दर्शन करते रहे और अति विशिष्ट पुरुष के रूप में उनके साथ व्यवहार करते रहे। पिता से रहित होकर अभय अपने को निराश अनुभव करने लगे। अचानक उन्हें वैसे ही आश्रय की आवश्यकता मालूम हुई, जैसे बचपन में होती थी। किन्तु अब वे बिना पिता के थे। अभय के वे शुभचिन्तक अब संसार से जा चुके थे, जो उन्हें हमेशा अपने ऐसे प्रिय पुत्र की तरह रखते आये थे, जिसे हर प्रकार से प्रेम-सहित देख-भाल की जरूरत थी, जो उन्हें वह हर वस्तु देते रहे जिसे वे चाहते थे, और जो मिलने वाले हर साधु-संत से प्रार्थना करते थे कि उनका पुत्र श्रीमती राधारानी का सच्चा भक्त बने, उनके सर्वोत्तम शुभचिन्तक अब जा चुके थे।

गौर मोहन की मृत्यु के तेरह दिन बाद श्राद्ध के दिन अभय और उनके भाई ने एक साथ औपचारिक फोटो खिचवाया। धार्मिक रीति के अनुसार दोनों भाइयों के सिर मुंडे थे। फोटो में अभय और उनके भाई अपने पिताजी के एक औपचारिक चित्र के अगल-बगल बैठे हैं। पिता का चित्र एक उठे हुए फलक पर है और काले कपड़े से घिरा है। वह खूबसूरती से मढ़ा है। गौर मोहन वृद्ध, किन्तु अभी भी विचार और आशय से पूर्ण दिखाई देते हैं। इस चित्र में वे उतने वृद्ध नहीं हैं, जितने उस पूर्व चित्र में थे, जिसमें वे बहुत दुर्बल लगते थे और आँखे लगभग प्रकाशहीन थी।

मुंडित-सिर अभय संन्यस्त भिक्षु प्रतीत होते है। उनका शरीर चौड़ी परतों में मुड़े भिक्षु के साधारण परिधान से ऊपर से नीचे तक आच्छादित है—वे उस चित्र से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होते हैं, जो उसी स्थान पर उसी मोटे कालीन के ऊपर सालों पहले खींचा गया था। वह उनके स्त्री-बच्चों के साथ का चित्र है। उसमें वे एकदम युवा गृहस्थ लगते थे जिसके ऊपर परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ हैं और जिसकी भंगिमा बताती है कि वे जानते हैं कि उन्हें संसार में कैसे रहना है और कैसे स्फूर्तिमय ढंग से आचरण करना है। लेकिन

इस चित्र में, जिसमें यद्यपि बच्चे भी हैं, जो जमीन पर उपेक्षित बैठे हैं। अभय का बायाँ हाथ अपने घुटने पर है, अच्छी तरह रखा हुआ, किन्तु विश्राम की हालत में, जबकि पहले चित्र में उनका बायाँ हाथ उनके चंचल पुत्र को पकड़े हुए है। अभय की पत्नी मौजूद नहीं है।

इस चित्र में अभय विस्मयोत्पादक लगते है। कोई नहीं कह सकता कि सामान्यतया वे सिर पर बाल और मूँछ रखते हैं, जिसे उन्होंने पिता के देहावसान के शोकपूर्ण अवसर पर अभी मुंडा दिया है। प्रत्युत यह उनका स्वाभाविक रूप लगता है। उनके आसपास एक रहस्यमय, आध्यात्मिक आभा है जैसी कि एक साधनारत तपस्वी से अपेक्षा की जाती है। उनकी आकृति से न तो आकुलता जाहिर होती है, न प्रसन्नता और न दुख। वे शान्त और परिचित लगते हैं, मानों पिता के निधन के दिन वे अचानक साधु हो गये हों। वे उसी तरह के साधु प्रतीत होते हैं, जिस तरह की कल्पना उनके पिता ने उनके बारे में की थी। वे ऐसे दिखाई देते हैं, मानों वे एक साधु हैं और हमेशा रहे हैं और आज के दिन उनका वह रूप अचानक उद्‌घाटित हो गया है। फोटो को बहुत ही सरसरी दृष्टि से देखने पर भी प्रतीत होता है कि सिर मुंडाकर और कमीज, जूते बिना, पीत वस्त्र धारण कर अभय साधु बन गये हैं। ●